विशेष ज़रूरत वाले बच्चों के प्रति हमारे समाज को और अधिक शिक्षित एवं संवेदनशील होने की ज़रूरत है

शिक्षिका मीनाक्षी गौड़ के साथ दीपक कुमार राय की बातचीत

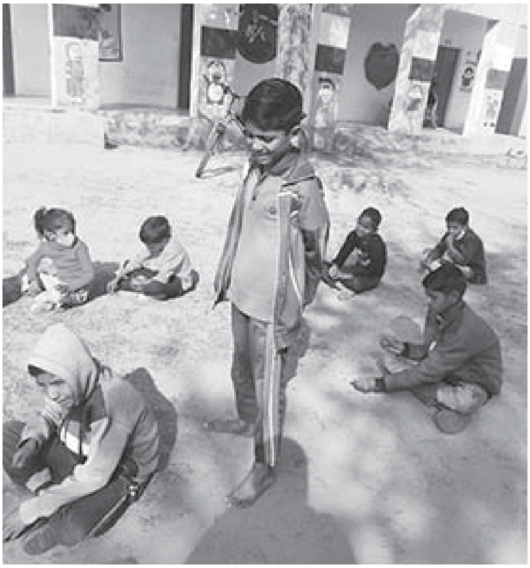

दीपक : अपने बारे में विस्तार से बताइए। घर, परिवार, समाज के बारे में, साथ ही आपकी रुचियाँ और सपने क्या-क्या थे?

मीनाक्षी : मेरा नाम मीनाक्षी गौड़ है। मैं अपने पति श्री नरेन्द्र कुमार शर्मा, दो बच्चों एवं सास-ससुर के साथ जयपुर में रहती हूँ। जन्म टोंक ज़िले के पारली गाँव में हुआ। प्रारम्भिक एवं माध्यमिक शिक्षा वहीं मिली। ससुराल जयपुर ज़िले के महापुरा ग्राम में है। हम मध्यमवर्गीय गौड़ समाज से ताल्लुक रखते हैं। पेंटिंग करना एवं लघु कथाएँ पढ़ना मुझे अच्छा लगता है। परित्यक्त एवं हाशिए पर कर दिए गए बुज़ुर्गों के लिए कुछ करना एवं उन्हें अपना स्थान और सम्मान दिलाना मेरा सपना है। बच्चों का साथ मुझे सँवारता है; चाहे घर हो या स्कूल।

दीपक : आप शिक्षिका कैसे बनीं? आप यही बनना चाहती थीं या ऐसा था कि नौकरी करनी ही थी, तो जो मिली, वह कर ली?

मीनाक्षी : बनना तो डॉक्टर था लेकिन ग्रामीण परिवेश, या यूँ कहें लड़कियों को निश्चित समय से ज़्यादा नहीं मिलता कुछ करने के लिए। शादी से पहले ख़ुद को सक्षम करना मेरा लक्ष्य था। मुझे कुछ आभास तो था कि हायर सेकेंडरी के बाद पढ़ने के लिए मुझे ज़्यादा समय नहीं मिलेगा और हुआ भी ऐसा ही। दो-तीन वर्ष ही मिले पढ़ने के लिए, तो मैंने बीएसटीसी करना ही उचित समझा। उसके बाद शिक्षिका ही बनना था और धीरे-धीरे यही पेशा मेरा सपना भी बनता गया। अपने-आप को समाज से जोड़ना पहला लक्ष्य था, चाहे कैसे भी हो। और यह पेशा समाज से जुड़ने का एक सशक्त माध्यम

है जहाँ आप आसानी से आमजन से जुड़कर कुछ सकारात्मक और सार्थक कर सकते हैं। जैसे-जैसे काम करती गई, पेशे से लगाव बढ़ता गया। और अब मुझे लगता है कि मैं तो इसी काम के लिए ही बनी थी।

दीपक : आप कितने सालों से पढ़ा रही हैं और किन स्कूलों में? ऐसे कुछ अनुभव साझा करें जिन्होंने आपको गढ़ा हो, आपके भीतर के शिक्षक या कि मनुष्य को।

मीनाक्षी : मैं क़रीब 20 सालों से पढ़ा रही हूँ। पहले 5 वर्षों तक मैंने प्राइवेट विद्यालय में पढ़ाया और सन् 2007 में सरकारी विद्यालय में मेरी नियुक्ति करौली ज़िले में हुई, वहाँ दो विद्यालयों में पढ़ाने का अवसर मिला। वह चुनौतीपूर्ण व रोमांचक यात्रा रही। पहली, तो वहाँ की क्षेत्रीय भाषा मेरे लिए बड़ी चुनौती थी। अध्यापन के लिए शिक्षक की विद्यार्थियों की मातृभाषा की समझ बहुत आवश्यक है। दूसरा, वहाँ रहकर उन बच्चों, उनके परिवारों के कठिन जीवन को मैं काफ़ी नज़दीक से देख पाई। उस कठिनता के बावजूद पढ़ाई के प्रति उनकी लगन ने मेरी सभी कठिनाइयों को काउंटर कर दिया। अब सन् 2018 से जयपुर ज़िले के विद्यालय में सेवाएँ दे रही हूँ। यहाँ के अनुभव और भी विविधता लिए हुए हैं। निजी विद्यालयों का आकर्षण सरकारी विद्यालयों के हाशियाकरण का कारण बना हुआ है। इस विद्यालय में मेरी नियुक्ति के समय विद्यालय का नामांकन शून्य था। आसपास की बस्ती के जो बच्चे पढ़ने को उत्सुक थे निजी विद्यालयों के हवाले थे। विद्यालय से दूर कच्ची बस्ती के ऐसे बच्चों को जो पढ़ाई से अलगाव रखते थे, उनमें पढ़ाई के प्रति लगन लगाना और विद्यालय तक लाना, कई सारे खट्टे-मीठे अनुभवों से भरा हुआ था। उनके अभिभावकों को समझाना, उनसे लड़ना भी, भागते बच्चों को पकड़ना एवं उन तक पहुँचने के लिए अपने ख़र्चे पर किराए पर ऑटो करना इन अनुभवों में शामिल हैं।

दीपक : कोविड-19 के दौरान आपके अनुभव क्या रहे?

मीनाक्षी : कोविड काल ने सरकारी विद्यालयों के लिए संजीवनी का कार्य किया। सरकारी प्रयासों ने अभिभावकों की आँखें खोल दीं। ऑनलाइन अध्ययन व्यवस्था का लाभ निर्धन विद्यार्थियों को नहीं मिल पा रहा था, इसके चलते मैंने विद्यार्थियों को समूहवार कुछ देर तक विद्यालय में बुलवाना उचित समझा। उन्हें विद्यालय में आते देख आसपास के अभिभावकों और बच्चों में भी विद्यालय से लाभ प्राप्त करने की रुचि जागी, और इस तरह विद्यालय में उन बच्चों का प्रवेश भी बढ़ गया जो कभी सरकारी विद्यालयों को तुच्छ एवं नकारा समझते थे। इस तरह पहले बने उनके तमाम मिथक या समझ, जो सरकारी विद्यालय के लिए थी, आधारहीन साबित हुई।

दीपक : आपकी चुनौतियाँ क्या रहीं? शिक्षक, ख़ासकर एक महिला के रूप में?

मीनाक्षी : निजी विद्यालयों से प्रतिस्पर्धा मुख्य चुनौती रही। सरकारी विद्यालय विद्यार्थियों को मूलभूत भौतिक सुविधाएँ नहीं दे पा रहे हैं। शैक्षणिक, सह-शैक्षणिक और भौतिक सुविधाएँ एवं अनुशासन में निजी क्षेत्र सरकारी स्कूलों से कुछ आगे ही रहे हैं। विद्यार्थियों एवं अभिभावकों में सरकारी विद्यालयों के प्रति आकर्षण और विश्वास जगाना मेरे लिए सबसे बड़ी चुनौती रही। समय की पाबन्दी महिलाओं के लिए एक बड़ी चुनौती की तरह है। वैसे है तो पुरुषों के लिए भी, लेकिन महिलाओं के लिए कुछ अधिक ही क्योंकि घर की ज़िम्मेदारियाँ अधिकांशतः उन्हीं के हिस्से आती हैं। विद्यालय समय पर जाना और इधर घर के भी सारे कार्य समय से ही करना; यह एक चुनौती तो हुई और यदि यह काम नहीं कर पाएँ तो महिलाओं को परिवार एवं समाज की उलाहनाओं का शिकार भी बनना पड़ता है।

कुछ यह भी रहा कि अकसर एक पुरुष और एक महिला के काम, उसके व्यक्तित्व, उसकी सामाजिक उपस्थिति को आँकने की कसौटियाँ अलग-अलग रखी जाती हैं; कई बार लगा कि इन सब चीज़ों का भी दबाव बनता है महिला पर और ऐसे में उसकी स्वाभाविक गति प्रभावित होती ही है।

दीपक : आप भाषा भी पढ़ाती हैं और गणित भी, तो क्या कुछ अन्दाज़ा है, कुछ अनुमान या अनुभव कि इन विषयों में बच्चों की चुनौतियाँ क्या हैं?

मीनाक्षी : भाषा सभी विषयों के अध्ययन के मूल में है। यह सभी विषयों को पढ़ाने का माध्यम उपलब्ध करवाती है। भाषा की बात करें तो पारम्परिक पद्धति से भाषा सीख पाना कुछ हद तक कठिन है। इस पद्धति में विद्यार्थियों को अभिव्यक्ति के अवसर कम मिलते हैं। पढ़ने के लिए पर्याप्त अवसर एवं सामग्री नहीं मिल पाती है अतः शब्द भण्डार की कमी रह जाती है। अभिव्यक्ति की विविधता और सम्भावनाएँ भी सिकुड़ जाती हैं। मातृभाषा या माध्यम भाषा की बनावट एवं शब्दों में कुछ अन्तर होता है। प्रारम्भिक अवस्था में यह अन्तर स्वीकार्य होने चाहिए।

गणित में यह चुनौतियाँ जस-की-तस हैं। गणित हो या भाषा, दैनिक जीवन से जोड़कर ही सिखाना उचित रहेगा अन्यथा बच्चे मात्राओं एवं हासिल में ही उलझकर रह जाते हैं। गणित जीवन से जुड़कर आसान होता है। सरकारी विद्यालयों में पर्याप्त शैक्षिक अधिगम सामग्री का अभाव भी एक बड़ी चुनौती है।

दीपक : अच्छा शिक्षक माने क्या? क्या सोचती हैं ऐसे सवालों के सन्दर्भ में?

मीनाक्षी : मेरे हिसाब से अच्छा शिक्षक वही है जो अपने विद्यार्थियों की क्षमता एवं स्वभाव को पहचाने और उसके अनुरूप व्यक्तिगत रूप से सम्बलन देते हुए शिक्षा दे। शिक्षा देना, यानी सीखना-सिखाना एक सहज प्रक्रिया का हिस्सा हो न कि कोई थोपी हुई या आरोपित गतिविधि।

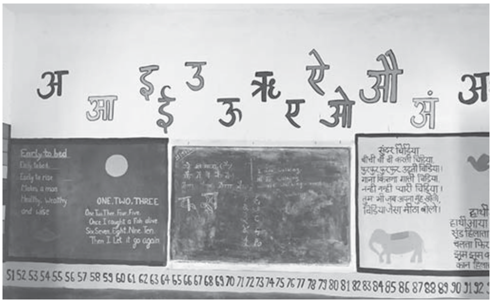

दीपक : बच्चे के सीखने और उसके मूल्यांकन को आप कैसे सुनिश्चित करती हैं?

मीनाक्षी : जिस प्रकार सीखना एक सतत प्रक्रिया है, उसी प्रकार मूल्यांकन भी सतत प्रक्रिया है। सरकारी विद्यालयों में पढ़ने वाले विद्यार्थी उम्र एवं सीखने के स्तर के अनुसार कई समूह में बँटें होते हैं, उनका मूल्यांकन केवल पेपर-पेंसिल टेस्ट से नहीं किया जा सकता। सीखने के दौरान उनके द्वारा विषय की अवधारणात्मक समझ एवं उसके अनुप्रयोग को भी ध्यान में रखा जाना सुनिश्चित करती हूँ। कई

विद्यार्थियों की उपस्थिति निश्चित नहीं होती है। वे जब आते हैं और अध्ययन कर रहे होते हैं, तभी उनका आकलन एवं स्तर का निर्धारण करना आवश्यक होता है। कई विद्यार्थी लिखकर अपने-आप को अभिव्यक्त नहीं कर पाते परन्तु मौखिक रूप से यह कार्य अच्छी तरह से कर पाते हैं। मूल्यांकन में मौखिक अभिव्यक्ति भी स्वीकार्य होती है। छोटे बच्चों को अपनी मातृभाषा में अभिव्यक्ति की पूरी छूट देती हूँ। सीखने के प्रतिफलों, यानी लर्निंग आउटकम्स को आधार तो मानती हूँ लेकिन एक मात्र सीमा नहीं, बच्चे इनके इतर और इनसे आगे भी काफ़ी कुछ सीखने की क्षमता भी रखते हैं और सीखते भी हैं। मेरा मानना है कि उनकी इस क्षमता को बेहतर और विस्तृत होने देना चाहिए।

दीपक : बच्चों के साथ आपने लम्बे समय तक काम किया है। उनकी सीखने-सिखाने की प्रक्रियाओं में शामिल रही हैं। इस दौरान के अपने कुछ अनुभव भी बताएँ; ख़ासतौर पर कुछ ऐसे जब आपको लगा हो कि आप भी बच्चों से कुछ सीख रही हैं?

मीनाक्षी : बच्चों के साथ कार्य करने के अनुभव विविधता लिए होते हैं। बच्चे ख़ुद सिखा देते हैं कि उन्हें कैसे सिखाया जा सकता है और उनसे कैसा व्यवहार किया जाना चाहिए। नियुक्ति के बाद शुरुआत में मिला अनुभव अद्भुत है। कक्षा 4 की एक छात्रा को गृह कार्य न करने पर डाँटा तो उसने मुझे अपने पिता से पिटवाने की धमकी दे डाली। ग़ुस्सा तुरन्त काफ़ूर हो गया। मैंने उससे कहा, जा बुला ला। वह दूसरे दिन नहीं आई। उसके अगले दिन आने पर मैंने उसे फिर कहा कि मैं तेरे पिता का इन्तज़ार कर रही हूँ। वह मेरी पिटाई करने कब आएँगे। यह क्रम 10-15 दिन चलता रहा। छात्रा पहले से ज़्यादा नरम एवं मेहनती हो गई थी। हालाँकि बाद में मुझे लगा कि शायद कोई और तरीक़ा भी हो सकता था इस प्रकरण को 'डील' करने का जिसमें परिणाम तो अच्छे आते लेकिन बच्ची रोज़-रोज़ की मेरी वाचिक प्रताड़ना से बच जाती!

मेरी नियुक्ति कुछ वर्षों तक एक दुर्गम स्थान पर रही। वहाँ के विद्यार्थियों की मेहनत, लगन एवं शिक्षकों के प्रति सम्मान की भावना ने मुझे बहुत कुछ सिखाया। एक मर्तबा जब विद्यालय का सारा भार मुझ अकेली पर आ गया तो कुछ झल्लाहट भी हुई और कुछ ग़ुस्सा भी बढ़ा। मुझे लगने लगा कि इससे मेरा काम, मेरी सोच और मेरा व्यक्तित्व प्रभावित होने लगा था और व्यवहार में बदलाव आया; बच्चों के प्रति भी और घर के लोगों के प्रति भी।

इसी बीच हुआ यह कि एक विद्यार्थी ने एक दिन आकर मुझसे कहा कि वह अब स्कूल नहीं आएगा क्योंकि यह स्कूल अब पहले जैसा नहीं रहा। तो मुझे काफ़ी अफसोस हुआ और आत्म-विवेचन एवं आत्म-मन्थन की आवश्यकता महसूस हुई। इस घटना के बाद से मैं सभी विद्यार्थियों पर व्यक्तिशः ध्यान देने लगी। विद्यालय के अन्य कार्यों के बोझ की झल्लाहट अब बच्चों पर नहीं उतारती।

दीपक : कम्युनिटी के साथ आपके अनुभव कैसे रहे, इस कोविड काल में और इसके पहले या बाद में भी?

मीनाक्षी : समाज के साथ भी कई अनुभव अपने-आप में विश्लेषणात्मक रहे हैं। जैसा कि मैंने पहले बताया, इस विद्यालय में नियुक्ति के समय विद्यालय का नामांकन शून्य था। उसका एक मात्र कारण सरकारी विद्यालयों से समाज का मोहभंग होना था। खाए, पिए, अघाए

परिवारों से आशा करना कठिन था कि वह मेरे कहने पर अपने बच्चों का दाख़िला इस विद्यालय में करवाएँगे। जैसे-तैसे विद्यालय से लगभग 2 किलोमीटर दूर स्थित कच्ची बस्ती पर ध्यान केन्द्रित किया। वहाँ से विद्यार्थियों को एक प्रकार से आयात ही किया गया। इसके बाद जब हाउसहोल्ड सर्वे के दौरान लोगों से मिलने का मौक़ा मिला तो यह रुझान आया कि हम अपने बच्चों को विद्यालय नहीं भेज सकते क्योंकि निम्न जातियों एवं कच्ची बस्ती के बच्चे विद्यालय में पढ़ते हैं। मैंने उनसे कहा कि जात-पात सिर्फ़ मनुष्य के लिए होती है। जब आप गाय या अन्य मवेशी ख़रीदते हो तो वह किस जात के घर से आई है यह बात किसी महत्त्व की नहीं होती। एक कुत्ते से आप इतना अच्छा बर्ताव कर सकते हो कि उसे गोद में उठा लेते हो, अपने बिस्तर पर बैठा लेते हो और किसी मनुष्य के बच्चे से ऐसा दुर्व्यवहार मुझे कतई स्वीकार्य नहीं है; चाहे आप अपने बच्चे का दाख़िला मेरे विद्यालय में करवाओ या नहीं। कोरोना काल ने इस जात-पात की खाई को काफ़ी हद तक पाट दिया। और अब विद्यालय में हर कम्युनिटी के बच्चे साथ-साथ सहकार एवं प्यार से पढ़ते हैं।

एक और अनुभव बड़ा विशेष रहा, एक अनुसूचित जाति की बच्ची हिचकते हुए मेरे पास दाख़िले के लिए आई। वह अपनी मानसिक विकलांग छोटी बहन की देखरेख करने की वजह से अध्ययन जारी नहीं रख पाई थी। मैंने दोनों बहनों का दाख़िला विद्यालय में कर लिया ताकि वह अपना अध्ययन जारी रख सके एवं उसकी छोटी बहन समाज से एवं समाज उससे अच्छी तरह व्यवहार करना सीखे। उनकी पहचान भी समाज से छुपाकर रखी गई ताकि वे दोनों किसी कटु अनुभव की शिकार न हों। उन्हें मैं अपने वाहन से ही विद्यालय ले जाती। इस कार्य में मेरे तात्कालिक स्टाफ ने भी मेरा सहयोग किया, यह बात भी बहुत अहम है। विकलांग बच्चों को विद्यालय से जोड़ने पर भी कई सवाल उठाए गए। मेरा हमेशा एक ही जवाब रहा कि इन बच्चों के लिए विद्यालय तो अलग हो सकते हैं, पर समाज अलग नहीं हो सकता है। इनको इसी समाज की एवं समाज को इन लोगों के साथ रहने व अच्छे व्यवहार की आदत होनी चाहिए। मुझे एक चीज़ हमेशा लगती है कि इन लोगों से व्यवहार करने के लिए हमारे समाज को और अधिक शिक्षित एवं संवेदनशील होने की आवश्यकता है।

दीपक : कोविड-19 के कारण अधिगम ह्रास और उसे फिर से हासिल करने के सरकारी व ग़ैर-सरकारी प्रयासों को कैसे देखती हैं?

मीनाक्षी : जब संसार के अधिकतर देशों की गति रुक गई, लोग घरों में क़ैद हो गए, मशीनें रुक गईं, काम-धन्धा, वाहन, निर्माण-विनिर्माण कार्य सभी रुक गए तब यह कैसे सम्भव था कि स्कूल-कॉलेज चालू रहते! लगातार 18 महीनों तक विद्यार्थी अपने घरों में क़ैद थे। वे न अध्ययन जारी रख सकते थे न ही शारीरिक श्रम वाले खेल, खेल सकते थे। और इस तरह शुरुआत हुई एक नई चुनौती की जिसे हम 'अधिगम ह्रास' या 'लॉस ऑफ़ लर्निंग' कह सकते हैं। एक-दो माह में यह संकट टल जाता तो कोई विशेष हानि नहीं होती, मगर दो सत्रों तक विद्यालय नहीं जा पाना गम्भीर चुनौती थी। पहली कक्षा का विद्यार्थी सीधे तीसरी कक्षा में पहुँच गया और तीसरी का पाँचवीं कक्षा में। बोर्ड परीक्षाएँ स्थगित करनी पड़ीं एवं अन्य विकल्प खोजे गए। इस दौरान शिक्षा प्रक्रिया एवं ऑफ़लाइन

अध्ययन की अपर्याप्तता पर मन्थन करने की आवश्यकता अनुभव की गई। राज्य सरकार ने पहल करते हुए ऑनलाइन शिक्षा के द्वार खोले। हालाँकि शिक्षा का यह माध्यम नया नहीं था। कई बड़े शिक्षा संस्थान इसका उपयोग कर रहे थे, लेकिन आम जनता के लिए यह माध्यम नया एवं ख़ास था। इसके तहत राज्य सरकार ने सरकारी विद्यालय में पढ़ रहे विद्यार्थियों के लिए स्माइल 1, स्माइल 2, स्माइल 3, शिक्षा वाणी, शिक्षा दर्शन, साप्ताहिक क्विज़ एवं हवा महल जैसे ऑनलाइन अध्ययन कार्यक्रम चलाए। इन कार्यक्रमों के माध्यम से विद्यार्थियों के अध्ययन

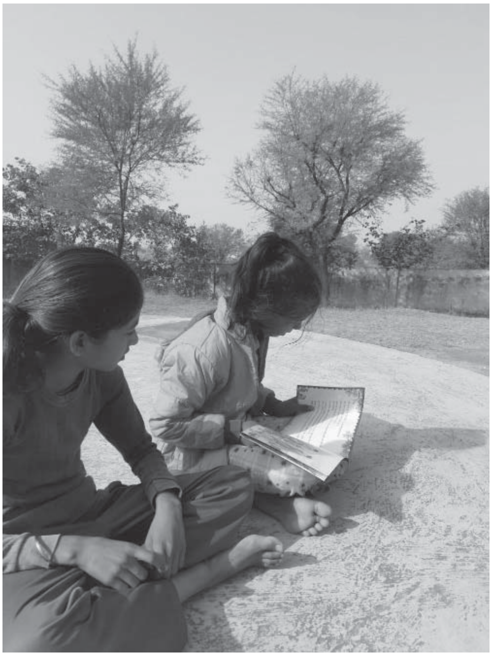

को तो गति प्राप्त हुई ही, शिक्षक-शिक्षार्थी संवाद भी स्थापित हुआ। परन्तु इन योजनाओं की भी कुछ सीमाएँ रहीं। जैसे–

1. सभी तक इनकी पहुँच सुनिश्चित न हो पाना;

2. निगरानी का अभाव;

3. विद्यालयी वातावरण का अभाव;

4. दोहरान न हो पाना;

5. नेटवर्क की समस्या;

6. अध्यापन की गति तीव्र होना; एवं

7. संवाद की कमी होना।

इसमें कोई दो राय नहीं कि इन तमाम कमियों के बावजूद ऑनलाइन माध्यम ने अध्ययन हेतु नया प्लेटफॉर्म उपलब्ध करवाया। इसके साथ ही राज्य सरकार ने सभी विद्यार्थियों के लिए कार्य पुस्तिकाएँ भी उपलब्ध करवाईं जिनसे विद्यार्थी क्रमिक रूप से आगे बढ़ पाए।

दीपक : लर्निंग लॉस को कम करने एवं रिकवर करने हेतु विद्यालय स्तर पर आपने क्या किया? कुछ ख़ास बिन्दु हों तो उन्हें भी थोड़ा विस्तार से रखें।

मीनाक्षी : लगभग 3 महीनों के अवकाश के बाद विद्यालय विद्यार्थियों के लिए न सही, पर शिक्षकों के लिए तो खुल ही गए थे। मेरा विद्यालय भी खुला। ऑनलाइन माध्यम की मॉनिटरिंग करते वक़्त संज्ञान में आया कि अधिकतर विद्यार्थियों के पास एंड्रॉयड फ़ोन नहीं हैं, हैं तो भी रोज़गार संकट के कारण रिचार्ज नहीं हैं, यदि यह दोनों समस्याएँ नहीं हैं तो भी बच्चों तक इनकी पहुँच न के बराबर है। इन समस्याओं को ध्यान में रखते हुए मैंने अभिभावकों की पूर्व सहमति से अल्पकाल के लिए छोटे-छोटे समूह में सप्ताह में 2-2 दिन क्रमिक रूप से विद्यार्थियों को बुलवाना शुरू किया। इस दौरान शारीरिक दूरी एवं सैनिटाइजेशन का ध्यान रखते हुए स्वयं एवं अपने मोबाइल के द्वारा अध्यापन करवाया जाना सुनिश्चित किया गया। इसमें कोई अधिक परेशानी नहीं आई क्योंकि विद्यार्थी स्वयं सीखना चाहते थे। सीखने का समय कम मिलने के कारण वे स्वयं तैयार रहते थे। घर पर आने वाली पढ़ाई सम्बन्धी समस्याओं को वे स्वयं अंडरलाइन करके लाते एवं उनका समाधान प्राप्त करते।

उस समय तक मेरे विद्यालय के सभी विद्यार्थी विद्यालय से लगभग 2 किलोमीटर दूर एक छोटी कच्ची बस्ती से आते थे। आसपास

की बस्ती के बच्चे निजी विद्यालयों में पढ़ते थे। मेरे विद्यार्थियों को विद्यालय से ऑनलाइन एवं ऑफ़लाइन शिक्षा का लाभ प्राप्त करते देख आसपास के बच्चों में भी विद्यालय आने की लगन जाग उठी। इसके दो कारण प्रमुख थे, एक तो वे अकेलापन महसूस कर रहे थे और दूसरा, उनके विद्यालयों ने ऑनलाइन अध्ययन हेतु कोई वैकल्पिक व्यवस्था नहीं की थी। यह बच्चे अपने अभिभावकों के साथ हमारे विद्यालय आने लगे। मैंने अपने स्तर पर उनकी शिक्षा का भी उचित प्रबन्ध करने का एक सफल प्रयास किया। इससे उनके मन में सरकारी व्यवस्थाओं के प्रति विश्वास पैदा हुआ और निजी विद्यालयों का आकर्षण कुछ कम।

कोविड काल ने मेरे विद्यालय, और मेरे ही क्यों, तमाम सरकारी विद्यालयों को कम्युनिटी में एक अलग प्रतिष्ठा दी, विस्तार दिया है। इस दौरान निजी विद्यालयों की मनमर्ज़ियों से तंग आकर अभिभावकों ने सरकारी विद्यालयों का रुख़ किया। इनमें लगातार नामांकन बढ़ने लगा। मेरा विद्यालय भी इसका अपवाद नहीं रहा। सबकुछ बन्द था, पूरी दुनिया बन्द थी तब भी सरकारी शिक्षक लोगों के बीच उनकी शिक्षा और चिकित्सा सम्बन्धी ज़रूरतों को लेकर मौजूद थे। तो यह विश्वास संजीवनी रहा और इससे मेरे प्रयास को भी एक विश्वास प्राप्त हुआ।

मेरी बेटी, जो स्नातक प्रथम वर्ष की छात्रा थी, उसकी भी छुट्टियाँ थीं। उसके कलाप्रेम व चित्रकारी की कला से लाभ प्राप्त करने की चाह में हम माँ-बेटी ने मिलकर विद्यालय को महज़ एक महीने में तमाम तरह की प्रिंट रिच सामग्रियों से भर दिया, कक्षा की दीवारों को कुछ स्थाई रूप से पेंट किया तो कुछ डिस्प्ले बोर्ड जैसा रखा जहाँ बच्चे पाठ आधारित प्रिंट रिच सामग्री डिस्प्ले कर सकते थे। कुछ हम भी बनाते हैं कुछ बच्चे भी। इसका लाभ मुझे अध्यापन में एवं विद्यार्थियों को अध्ययन में आज भी मिलता है।

इस समयावधि में अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन द्वारा करवाई गई कार्यशालाओं से भी हमें काफ़ी सहयोग मिला। इनके ज़रिए कई ऐसे सुझाव निकलकर सामने आए जो कोविड काल में हुए अधिगम ह्रास की क्षतिपूर्ति हेतु बड़े ही कारगर साबित हो सकते थे। इनमें से कुछ का प्रयोग मैंने अपने विद्यालय में लॉस ऑफ़ लर्निंग की रिकवरी के लिए किया भी और अपेक्षित परिणाम भी मिले।

इसके साथ ही अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन के साथियों ने भी समय-समय पर विद्यालय का सहयोग किया। उनके द्वारा उपलब्ध कराई गई पुस्तकों से रीडिंग कॉर्नर का निर्माण किया गया। इससे विद्यार्थियों में पढ़ने की परम्परा विकसित हुई। इन किताबों के ज़रिए विद्यार्थी अपने स्तरानुकूल अध्ययन करने लगे। वे इन किताबों को उलट-पलट कर देख सकते थे, पढ़ सकते थे या घर ले जाकर अपने परिजनों के साथ अध्ययन कर सकते थे। इससे विद्यार्थियों में आ रहे रीडिंग गैप को पाटने में बहुत सहायता मिली। जिन बच्चों को भाषा सम्बन्धी दिक़्क़तें आ रही थीं, अक्षर और शब्द सही तरीक़े से न पहचान पा रहे थे न ही बोल पा रहे थे, उन्होंने भी इन किताबों की सोहबत में ख़ुद में सुधार किया है।

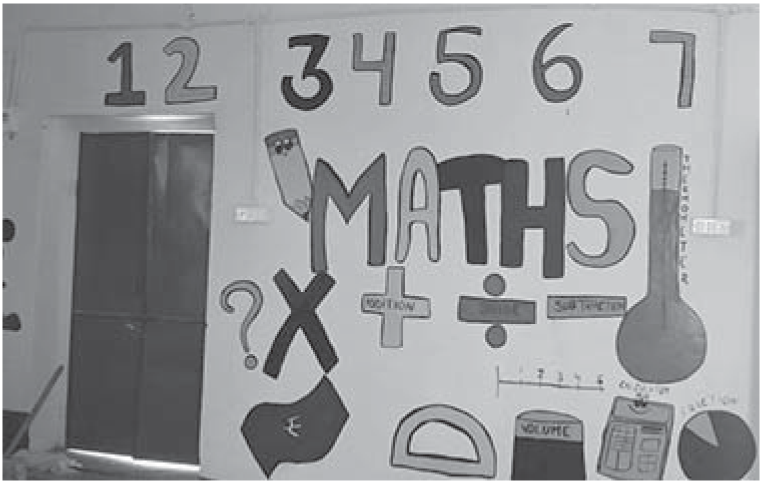

समय-समय पर हमने बच्चों को वर्कशीट उपलब्ध करवाईं जिन्हें उन्होंने अपने स्तर पर हल किया। इस कार्य से मुझे ज्ञात भी हुआ कि अध्ययन में कहाँ कमी रह गई है। इस गतिविधि से विद्यार्थियों की कठिनाइयों को समझना एवं उनके अनुसार अध्यापन हेतु नई रणनीतियाँ बनाना सहज-सुगम हुआ। टीएलएम को किस प्रकार उपयोग में लेना है और उसपर काम कैसे करना है, यह समझ बनी तो मेरा काम आसान हो पाया। फिर मैंने भी अपने हिसाब से बच्चों के स्तर और लर्निंग आउटकम्स के हिसाब से कई और वर्कशीटें बनाईं एवं काम में लीं, चाहे वह हिन्दी की हों, गणित या अँग्रेज़ी की।

बेसलाइन मूल्यांकन तो मैंने किया ही और उससे बच्चों का स्तर जानने में मदद भी मिली। उनका समूहन भी हुआ लेकिन यह बात आमतौर पर दिखी कि किसी-न-किसी प्रकार से जो बच्चे अपने शिक्षक या स्कूल के सम्पर्क में रहे वे अपेक्षाकृत बेहतर रहे।

समय-समय पर फ़ाउण्डेशन के साथियों द्वारा बनाई गई टीएलएम भी विद्यालय में उपलब्ध करवाई गई थी और कुछ हम लोगों ने स्कूल में भी बनाई जिससे अध्ययन-अध्यापन में काफ़ी सुविधा प्राप्त हुई। जब काम में सहयोग मिलता है तो व्यक्ति को अपने प्रयास की सार्थकता भी अनुभव होती है। मेरे स्कूल के, फ़ाउण्डेशन के साथियों ने मुझे यह अनुभव कराया जिससे कुछ और अधिक अच्छा करने की लगन निरन्तर बढ़ती गई।

शुरू में तो नहीं, लेकिन बाद में जब भी मैं कम्युनिटी के लोगों के बीच गई, उनका भी काफ़ी सहयोग मिला। एक हक़ीक़त यह भी है कि मैं उनके बीच तमाम सरकारी योजनाओं को लेकर जाती रही हूँ और इससे आसपास के लोगों में सरकारी विद्यालयों के प्रति विश्वास जागृत हुआ। ये ही वे लोग थे जो कभी सरकारी विद्यालय के अन्दर आना तक पसन्द नहीं करते थे। आज वे ख़ुशी-ख़ुशी मेरे साथ विद्यालय के विकास में सहायता प्रदान करते हैं, बच्चों की शिक्षा और विद्यालय की ज़रूरतों को लेकर भी जागरूक हैं। इस तरह विद्यालय एवं समुदाय के मध्य एक दृढ़ सम्बन्ध स्थापित हुआ है।

दीपक : शिक्षा के क्षेत्र में क्या और बेहतर किया जा सकता है? क्या बेहतर हो रहा है?

मीनाक्षी : मेरी समझ के अनुसार शिक्षा का अर्थ सुसभ्य और सुसंस्कृत बनने की प्रक्रिया से है। साक्षर होना तो एक शुरुआती प्रक्रिया है। शिक्षा तो दरअसल हमें एक बेहतर मनुष्य बनाती है, अच्छे और बुरे के बीच अन्तर कर सकने की समझ देती है। यह हमारी पहली ज़रूरत है। जिस प्रकार भूखे पेट के लिए भोजन के रूप में रोटी पहली प्राथमिकता है और सब्ज़ी, फल या मिठाई जैसी कुछ ग़ैर-ज़रूरी खाद्य वस्तुएँ द्वितीयक जिनके बिना भी काम चल सकता है। बाक़ी चीज़ें बाद में आती हैं पर शिक्षा सबसे पहले।

शिक्षा के द्वारा विद्यार्थियों को सभ्य-सुसंस्कृत बनाने के साथ किसी रोज़गार योग्य बनाना सबसे ज़रूरी है। दूसरा, शिक्षा का माध्यम मातृभाषा ही होना चाहिए अन्य भाषा का अध्ययन विद्यार्थी की इच्छानुसार हो। शिक्षा विद्यार्थी को परिश्रमी, साहसी, मृदु, जागरूक एवं इमोशनली इंटेलिजेंट बनाए, यह बहुत आवश्यक है। *नई शिक्षा नीति* से इनमें से कई कठिनाइयों से निजात मिल सकेगी, ऐसा मुझे लगता है। विद्यार्थियों को कला, योग एवं आउटडोर खेलों से जोड़ना उनमें कई तरह की क्षमताओं का संवर्धन कर सकता है।

दीपक : स्कूल खुलेंगे तो क्या योजना है आपकी, कि बच्चों के साथ अब कैसे काम करना है?

मीनाक्षी : भविष्य में भी कक्षावार एसेंशियल लर्निंग आउटकम चिह्नित करते हुए उनके स्तरानुसार जो समूह बनाए गए हैं, योजना भी उसी हिसाब से बनाई गई है। तदनुरूप आगे बढ़ते हुए काम करने की योजना है। छुट्टियों के बाद जब स्कूल खुलेंगे तो हम अपनी योजना को लेकर आगे बढ़ रहे होंगे और उम्मीद करते है कि लर्निंग लॉस की भरपाई करते हुए हम तमाम बच्चों को उनके कक्षा स्तर तक ला पाएँगे।

मीनाक्षी गौड़ 20 वर्षों से शिक्षण कार्य से जुड़ी हुई हैं। आप जयपुर के ब्लॉक सांगानेर ग्रामीण में प्राथमिक विद्यालय आडवाणी की ढाणी में कार्यरत हैं। आपने एकल शिक्षक वाली प्राथमिक कक्षाओं में भाषा और गणित शिक्षण में सराहनीय कार्य किया है। साथ ही विद्यालय में प्रिंट रिच वातावरण और रीडिंग कार्नर के माध्यम से बच्चों के बीच सार्थक गतिविधियाँ आयोजित करती हैं। लिखना-पढ़ना इनकी अभिरुचि है और वे लगातार इन गतिविधियों से जुड़कर अपने को भी एवं अपने भीतर के शिक्षक को भी बेहतर करती रहती हैं।

सम्पर्क : meenakshigour47@gmail.com

दीपक कुमार राय अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, जयपुर, राजस्थान में 2019 से रिसोर्स पर्सन के रूप में काम कर रहे हैं। आप इलाहाबाद विश्वविद्यालय से स्नातकोत्तर, और डीफिल डिग्री लेने के बाद उच्च शिक्षा में प्राध्यापक के रूप में अध्ययन-अध्यापन से जुड़े रहे। आपने दिगंतर में एसोसियेट फेलो के रूप में शैक्षणिक शोध से जुड़ी गतिविधियों में भागीदारी की है। आपकी इतिहास, साहित्य, विचार और वैचारिकी पर केन्द्रित लगभग एक दर्जन पुस्तकें प्रकाशित हैं। आपने बिहार प्रगतिशील लेखक संघ की पत्रिका *रोशनाई*, साप्ताहिक समाचार पत्र *गणादेश, प्रतिश्रुति, आवाज जन मन की, संघतिया* आदि पत्रिकाओं के सम्पादन सहित *सैद्धान्तिकी* और *मतादर्श* दो शोध पत्रिकाओं का भी सम्पादन किया है।

सम्पर्क : deepak.rai@azimpremjifoundation.org